इन्स्ता

चिंता की दर

भारतीय अर्थव्यवस्था के लगातार कमजोर होते जाने को लेकर चर्चा बहुत पहले से शुरू हो गई थी, पर सरकार ने इसे गंभीरता से नहीं लिया। जब चालू वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही में विकास दर घट कर साढ़े चार फीसद पर आ गई, तब सरकार के माथे पर चिंता की लकीर कुछ गाढ़ी हुई। फिर भी वित्तमंत्री ने कहा कि अर्थव्यवस्था की विकास दर कुछ सुस्त जरूर है, पर इसे मंदी कहना उचित नहीं। जल्दी ही विकास दर का रुख ऊपर की ओर मुड़ जाएगा। दूसरी तिमाही के नतीजों को देखते हुए भारतीय रिजर्व ने इस वर्ष की विकास दर पांच फीसद के आसपास रहने का अनुमान जताया। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक ने भी भारत की विकास दर छह फीसद के आसपास रहने का अनुमान लगाया है। अब एशियाई बैंक ने भारत में वृद्धि दर 5.1 फीसद रहने का अनुमान लगाया है। यानी भारत के लिए यह गंभीर चिंता का विषय है। एशियाई विकास बैंक ने यह भी बताया है कि रोजगार सृजन की दर घटी है और फसलों के खराब होने और कर्ज की कमी के कारण खेती और ग्रामीण क्षेत्रों पर दबाव बढ़ा है। रोजगार की कमी की वजह से उपभोग की दर भी घटी है, जिसके चलते औद्योगिक विकास दर पर प्रतिकूल असर पड़ा है।

भारत की विकास दर में कमी अचानक नहीं आई है। इसकी रफ्तार पिछले चार साल से लगातार न सिर्फ सुस्त है, बल्कि इसका रुख निरंतर नीचे की तरफ बना हुआ है। पहले नोटबंदी की मार छोटे कारोबारियों पर बहुत गंभीर पड़ी थी। फिर जीएसटी लागू होने के बाद रही-सही कसर भी पूरी हो गई। इसमें करों का ढांचा तर्कसंगत न होने और नियम-कायदों की अव्यावहारिकता के कारण बहुत सारे छोटे कारोबारियों को परेशानी पैदा हुई। इसके चलते भी बहुत सारे रोजगार बंद हुए। जब छोटे कारोबार बंद होते हैं, तो रोजगार के बहुत सारे अवसर भी बंद हो जाते हैं। फिर बैंकों की बहुत बड़ी रकम बट्टे खाते में चली जाने और कर्ज वसूली न हो पाने के कारण भी न सिर्फ उनके, बल्कि दूसरे अन्य क्षेत्रों के कारोबार पर भी बुरा असर पड़ा। भवन निर्माण के क्षेत्र में कुछ तो नियमों की सख्ती की वजह से सुस्ती आई और कुछ लोगों की आय घटने या रोजगार जाते रहने से घट गई। इस तरह इस क्षेत्र में बहुत सारे लोगों के लिए रोजगार के रास्ते बंद हो गए। यों कुशल युवाओं को अपना रोजगार शुरू करने के लिए कर्ज मुहैया कराए गए, जिससे उम्मीद थी कि नए रोजगार पैदा होंगे, पर वह योजना भी कारगर साबित नहीं हुई।

इन तमाम स्थितियों के चलते भारतीय अर्थव्यवस्था की रफ्तार सस्त होती गई। अर्थव्यवस्था के खराब रहने का बडा असर निवेश पर पड़ता है। निवेश रुक जाता है। विदेशी कंपनियां भी खराब अर्थव्यवस्था वाले देशों में कारोबार को लेकर उत्साहित नहीं होतीं। फिर जनकल्याणकारी योजनाओं के लिए विश्वबैंक आदि से जो कर्ज लिए गए होते हैं, उनके ब्याज चुकाने भारी पड़ने लगते हैं। यही वजह है कि सरकार का राजकोषीय घाटा भी बढ़ा है। ऐसे में सरकार के सामने चुनौतियां कई हैं। जब तक रोजगार नहीं बढ़ेगा, तब तक अर्थव्यवस्था मजबूत नहीं होगी और जब तक अर्थव्यवस्था कमजोर रहेगी, तब तक रोजगार के मोर्चे पर सुस्ती से पार पाना मुश्किल बना रहेगा। ऐसे में सरकार को बहुत सावधानी और संजीदगी से आर्थिक नीतियों पर विचार और फिर कोई व्यावहारिक कदम उठाने पडेंगे।

सफर का तकाजा

नि सिर्फ दिल्ली और दूसरे महानगरों में, बल्कि देश के लगभग सभी शहरों और कस्बों तक में सड़कों पर जाम एक बड़ी समस्या है। आमतौर पर सभी लोग इससे जूझते हैं, लेकिन शायद ही कभी इस समस्या पर गौर करने की जरूरत समझी जाती है। जाम की वजह से वक्त की बर्बादी और जरूरी काम न हो पाने से लेकर जान के जोखिम जैसी स्थितियां भी पैदा होती हैं। इस समस्या से निपटने के लिए यातायात महकमे की ओर से फौरी तौर पर तो कुछ कदम उठाए जाते हैं, लेकिन कुछ ही वक्त के बाद फिर से वही स्थिति कायम हो जाती है। अब इस मसले पर गठित राज्यसभा की एक विशेष समिति ने अपने अध्ययन के बाद कुछ सिफारिशें की हैं। अगर उन पर अमल होता है तो कम से कम दिल्ली में सड़कों पर कुछ राहत की उम्मीद की जा सकती है। समिति के मुताबिक एक विशेष लेन यानी मार्ग की व्यवस्था की जाए, जो खासतौर पर एंबुलेंस और दमकल जैसे आपात वाहनों के लिए हो। बेतरतीब चलने वाले दुपहिया वाहनों के लिए भी अलग रास्ता होना चाहिए। इसके अलावा, नए वाहन खरीदने की इजाजत तभी मिले, जब पुराने वाहन की समय सीमा खत्म हो जाए और खरीदार के पास पार्किंग की व्यवस्था हो।

यों, एक सुव्यवस्थित शहर में यातायात के लिए अलग से इन सिफारिशों की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए। सड़क-निर्माण में विशेष लेन की व्यवस्था के साथ-साथ लोगों की आम आदत में जरूरत और उपभोग का संतुलन होना चाहिए। लेकिन हमारे यहां ऐसे दृश्य आम हैं कि सड़क पर पीछे से एंबुलेंस या दमकल जैसे आपात वाहन आ रहे हों तो उसके आगे चल रहे वाहन किनारे होना जरूरी नहीं समझते, जबिक यह एक सामान्य समझ होनी चाहिए कि एंबुलेंस और दमकल किसी की जान बचाने की कोशिश में जा रहे होते हैं और उनका पहले निकलना बेहद जरूरी है। दुनिया के कई देशों में एंबुलेंस या दमकल के लिए रास्ता खाली करना एक सहज बर्ताव है। मगर हमारे देश में यह अफसोस कायम है। हालांकि इसकी एक वजह यह भी है कि सड़कों पर वाहनों की तादाद इतनी ज्यादा होती है कि कई बार पीछे से आ रहे वाहनों के लिए रास्ता छोड़ना मुमकिन नहीं हो पाता। शायद इसी वजह से राज्यसभा की समिति ने ऐसे वाहनों के लिए विशेष लेन की सिफारिश की है।

एक मुश्किल यह है कि कई लोगों के पास पहले से अपनी जरूरत के वाहन होते हैं, फिर भी वे नई गाड़ी खरीद लेते हैं। यह भी संभव है कि उनके पास वाहन की पार्किंग की जगह न हो। इससे सड़कों पर तो वाहनों की भारी तादाद बड़े जाम की वजह बनती ही है, अक्सर मुहल्लों-कॉलोनियों में सड़कों के दोनों ओर वाहन खड़े कर दिए जाते हैं, जहां पैदल चलना भी मुश्किल होता है। सड़कों पर बहुत कम ऐसे लोग होते हैं, जो वाहन चलाते हुए यातायात के सभी नियम-कायदों का खयाल रखते हैं। जबकि ऐसे तमाम लोग हैं, जो न केवल लापरवाही से वाहन चलाते हैं, बल्कि कई बार नियम तोड़ने में अपनी शान भी समझते हैं। यह सड़क-निर्माण के मामले में बुनियादी ढांचे में खामी के बरक्स ऐसी समस्या है, जिसके रहते सहज और सुरक्षित सफर सुनिश्चित हो पाना लगभग नामुमिकन है। यानी व्यवस्थागत कमियों के समांतर अगर वाहन चालक और बाकी लोग अपनी गड़बड़ियों के बारे में अपने रुख में बदलाव नहीं करेंगे, तब तक सड़कें सहज और सुरक्षित नहीं हो सकेंगी।

कल्पमधा

मनुष्य आश्चर्य पर मुग्ध होता है। यही हमारे सम्पूर्ण विज्ञान का मूल आधार है। - इमर्सन

चीन के लिए चुनौती बना हांगकांग

ब्रहमदीप अलूने

हांगकांग की मुख्य कार्यकारी कैरी लाम पर भी जनता को भरोसा नहीं रह गया है। लोग उन्हें चीनी एजेंट के तौर पर देखते हैं। जनता को स्थानीय पुलिस पर भी भरोसा नहीं है। ऐसे में इस व्यापारिक केंद्र में कानून-व्यवस्था बड़ी चुनौती बन गई है। हाल के स्थानीय चुनावों में लोकतंत्र समर्थकों को शानदार जीत मिली है। इस जीत को एक तरह से जनमत संग्रह के रूप में भी देखा जा रहा है।

अगर्थिक समृद्धि और आर्थिक सुधार पर आधारित नीतियों से संपूर्ण मानव अधिकारों की सुरक्षा नहीं हो सकती। लोकतंत्र पर आधारित समाज राजनीतिक अधिकारों में समानता, स्वतंत्रता, शांति और सुख-समृद्धि महसूस करता है, इसलिए उसे आर्थिक उच्च विकास के नाम पर खामोश नहीं किया जा सकता। आज हांगकांग इसी स्थिति से गुजर रहा है। दुनिया का सबसे बड़ा व्यापारिक केंद्र हांगकांग अब तक उच्च विकसित अर्थव्यवस्था के लिए पहचाना जाता था. लेकिन इस समय यह चीन की लोकतंत्र विरोधी नीतियों के खिलाफ मुखर होकर खड़ा है। यहां के युवा तेजी से अलगाववादी बन रहे हैं, हथियार उठा रहे है, हिंसक प्रदर्शन कर रहे हैं और अमेरिका जैसा देश उनका राजनीतिक समर्थन कर चीन को चुनौती दे रहा है।

यहां यह ध्यान रखना होगा कि आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों के बीच अलगाव पैदा करने की डेंगशियाऊ पिंग की चीन की पुरानी विदेश नीति भारत,

रूस, अफगानिस्तान या अन्य देशों में भले ही सफल हो जाए, लेकिन उसके अपने भाग हांगकांग में यह बुरी तरह पस्त पड़ गई है। जनवादी चीनी गणराज्य द्वारा प्रशासित पंजीवादी हांगकांग में राजनीतिक उदारीकरण और आर्थिक उदारीकरण के बीच सामंजस्य कायम न कर पाने की चीनी नाकामी हिंसक होकर लोकतांत्रिक आंदोलन को कचलने देने को आमादा है। साम्यवादी चीन हांगकांग के विकास को आर्थिक नीतियों से जोड कर वहां के बाशिंदों के राजनीतिक अधिकारों को नजरअंदाज कर रहा है और चीन की यह नीति जनता को स्वीकार नहीं है। चीन की यह मान्यता है कि वह अपने विकास के लिए अन्य देशों का शोषण नहीं करेगा. लेकिन उसकी राजनीतिक दृष्टि लोकतंत्र विरोधी रही है, इसलिए उसके अपने इलाकों में ही अंतर्विरोध देखा जा सकता है। एक तरफ चीन अपने अशांत इलाके शिनजियांग प्रांत में विकास कर लोगों को दबा रहा है, जबकि वहां बसने वाले मुसलमानों के राजनीतिक अधिकार छीन लिए

गए हैं। जनता के राजनीतिक अधिकारों के प्रति साम्यवादी चीन का आक्रामक व्यवहार न शिनजियांग प्रांत के लोगों का विश्वास जीत सका है, न ही वह इस नीति पर चल कर हांगकांग के लोगों का भरोसा जीत सकेगा।

लोकतांत्रिक आंदोलन चीन के लिए विरोध का प्रतीक माने जाते रहे हैं और चीनी शासक और रणनीतिकार इसे बेरहमी से दबाने में भरोसा करते हैं। सन 1989 में चीन के छात्रों ने थियेनमान चौक पर लोकतंत्र की बहाली के लिए प्रदर्शन किया था, जिसे चीनी सत्ता ने सख्ती से कुचल डाला था। हांगकांग में चीन आर्थिक उदारीकरण बनाए रखने का समर्थक तो है, परंतु राजनीतिक उदारीकरण का विरोधी है। लोकतंत्र को दबाने की चीन की यह प्रवृत्ति हांगकांग में भी सामने आई है।

युवा के ताईवान में प्रत्यर्पण की खबरों से भी लोग भारी विरोध पर उतर आए थे। चान टोंग-काई नाम के युवक पर पिछले साल ताइवान में अपनी गर्भवती प्रेमिका की हत्या करके भाग कर हांगकांग आने का आरोप है. लेकिन हांगकांग और ताइवान के बीच कोई प्रत्यर्पण संधि नहीं है। इस मामले के बाद चीनी सरकार ने प्रत्यर्पण काननों में बदलाव की योजना बनाई गई थी। चीन के इस कदम से नाराज हांगकांग के लोगों ने बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन शुरू कर दिए। प्रस्तावित कानून के आलोचकों का कहना है कि चीन में प्रत्यर्पण से कई लोगों को मनमाने ढंग से हिरासत में लिया जा सकेगा और उन पर मुकदमा चलाया जा सकेगा। हांगकांग के

लोग इस बात से भयभीत हो गए कि चीन यहां के लोकतंत्र समर्थकों को भी निशाना बना सकता है और उन्हें चीन में प्रत्यर्पण कर अत्याचार कर सकता है। हालांकि चीन की ऐसी मंशा को लेकर दुनिया को कोई संदेह भी नहीं है। हालांकि महीनों के भारी विरोध प्रदर्शनों के बाद सरकार को इसे औपचारिक रूप से वापस ले लिया, लेकिन प्रदर्शन अब तक नहीं थमे हैं।

हांगकांग में लोकतंत्र को नियंत्रित और प्रशासित करने के चीन के साम्यवादी प्रयास वहां की जनता के लिए विरोध का कारण बने हैं। साल 2017 में चीन ने यह तय करने का प्रयास किया था कि हांगकांग में निर्धारित निर्वाचन में भाग लेने वाले प्रत्याशियों के नाम का चयन चीन के साम्यवादी दल द्वारा किया जाएगा। हांगकांग के लोगों ने चीन की इस नीति को अपने मौलिक और पारंपरिक अधिकारों पर अतिक्रमण माना और यहीं से विरोध शुरू हुआ। हांगकांग के लोगों का मानना है कि



इस साल अक्तबर में हत्या के आरोपी एक हांगकांग उनके प्रतिनिधि के चयन का अधिकार उन्हें ही होना चाहिए। इसके पहले 1997 ने जब ब्रिटिश आधिपत्य से हांगकांग को चीन को हस्तांतरित किया गया था, तब चीन ने यह वादा किया था कि हांगकांग में लोकतंत्र की स्थापना होगी। अब चीन हांगकांग में अपने उस वादे और नीति से उलट काम कर रहा है। इसीलिए उसका वैश्विक विरोध हो रहा है। हांगकांग को लेकर अमेरिका की जो नीति सामने आई है, उससे साफ है कि दुनिया हांगकांग में चीन की लोकतंत्र विरोधी गतिविधियों पर नजर रखे हुए है और वह जनता के साथ खड़ी है। इन सबके बीच बेजिंग की आपत्तियों को दरिकनार कर अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने हांगकांग में प्रदर्शनकारियों को समर्थन देने वाले कानून पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। ट्रंप के हस्ताक्षर के

बाद अब हांगकांग मानवाधिकार एवं लोकतंत्र अधिनियम, 2019 बिल कानून बन गया है। यह कानून मानवाधिकारों के उल्लंघन पर प्रतिबंधों का उपबंध करता है। इसके बाद हांगकांग की पुलिस को ऐसा सामान निर्यात नहीं हो सकेगा जिससे प्रदर्शनकारियों को नुकसान पहुंचाया जा सके। अमेरिकी समर्थन से हांगकांग के लोग उत्साहित हैं और इस कारण चीन का विरोध बढने का संकट गहरा गया है।

हांगकांग की मुख्य कार्यकारी कैरी लाम पर भी जनता को भरोसा नहीं रह गया है। लोग उन्हें चीनी एजेंट के तौर पर देखते हैं। जनता को स्थानीय पुलिस पर भी भरोसा नहीं है। ऐसे में इस व्यापारिक केंद्र में कानून-व्यवस्था बड़ी चुनौती बन गई है। हाल के स्थानीय चुनावों में लोकतंत्र समर्थकों को शानदार जीत मिली है। इस जीत को एक तरह से जनमत संग्रह के रूप में भी देखा जा रहा है। चीनी शासन के विरोध में सभी आय वर्ग के लोग लामबंद हो गए हैं और इसका असर वहां के जनजीवन पर भी देखा जा सकता है। लोकतंत्र

> समर्थक आंदोलन के छह महीने पूरे होने पर आयोजित जनसभा में लाखों लोगों ने काले कपड़े पहन कर भाग लिया और इसे चीन के विरोध के तौर पर भी देखा जा रहा है। हांगकांग की संसद में घुस कर युवा ब्रिटिश कालीन झंडा फहराकर अपना गुस्सा जता चुके हैं। चीन के राष्ट्रीय गान के प्रति कई मौकों पर असम्मान दिखता है। इन घटनाओं का असर चीन की शक्तिशाली सत्ता पर पडना स्वाभाविक है।

> हालांकि छह महीने से चल रहे इस आंदोलन से हांगकांग की व्यापारिक प्रतिष्ठा को गहरी ठेस पहुंची है और यह देश आर्थिक और कारोबारी संकट से घिरने लगा है। जीडीपी में गिरावट दर्ज की गई है और मंदी का असर जनजीवन पर भी देखा जा रहा है। इन सबके बीच चीन का नजरिया इस लोकतांत्रिक आंदोलन को कुचलने

वाला ही नजर आता है। चीन को लगता है कि हांगकांग का आर्थिक विकास कर लोगों को खामोश किया जा सकता है. लेकिन उसकी नीति में लोगों को भरोसा नहीं है। हांगकांग के लोग बिना किसी नेता के लगातार प्रदर्शन कर रहे हैं। आंदोलनकारियों में अधिकांश यवा हैं। वहीं चीन के समर्थन में भी एक समूह है जो लोकतंत्र के पक्ष में खड़े नेताओं को निशाना बना रहा है। चीन की जल्दबाज़ी के चलते एक विकसित और अत्याधृनिक क्षेत्र गृहयुद्ध की ओर बढ़ रहा है। हांगकांग के लोग लोकतंत्र में विश्वास करते हैं। उन्हें साम्यवाद की आक्रामकता स्वीकार नहीं है। ये लोग अपनी भावी पीढी के लिए साम्यवादी चीन की नीतियों को संकट की तरह देख रहे हैं।

शहर में स्त्री

मेहजबी

ई बार गांव के लड़के-लड़िकयां पढ़ने या रोजी-रोटी कमाने महानगरों में आते हैं और पढ़ाई पूरी करके वहीं बस जाते हैं। कुछ अपने घर वालों की राजी-खुशी से पारंपरिक तौर-तरीके से शादी करते हैं, अपनी बिरादरी या जाति से और अपने क्षेत्र की दुल्हन मोटा दहेज लेकर लाते हैं। कुछ लड़के महानगरों में ही मुहब्बत कर बैठते हैं और घर वालों को मना कर उनसे शादी भी कर लेते हैं। मुसीबत उन जोड़ों के साथ पेश आती है, जहां ग्रामीण पृष्ठभूमि के लड़के और शहर में पैदा हुई, पली-बढ़ी लड़की के बीच मुहब्बत हो जाता है। लड़का गांव लौट जाता है। वहीं कोई रोजगार या अपनी खेती देखता है, व्यवसाय करता है। इसके बाद मसला पेश आता है शहर की लड़की गांव जाकर रहेगी या नहीं। परेशानी इसके बाद शुरू होती है। लड़की को गांव के माहौल में ढलने के लिए मजबूर होना पड़ता है और उसका प्रेमी भी उससे यही उम्मीद करता है। ऐसे में लड़की अकेली पड़ जाती है।

दरअसल, कुछ भौतिक सुविधाओं में बढ़ोतरी को छोड़ दें तो आज भी ग्रामीण इलाकों में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के साधन सीमित हैं। ये कुछ कारण हैं, जिनकी वजह से शहर की लडिकयां गांव में नहीं रहना

चाहतीं। हालांकि खुद लड़के भी ऐसा ही सोचते हैं। एक बड़ा कारण और है। जहां तक मेरा अनुभव है, बाकी लोगों के अलावा बहुत सारे मुसलिम परिवारों में भी लोगों का रहन-सहन और उनकी सोच एक ऐसी जगह पर कायम है, जहां लोग बेटियों को किसी नियमित कॉलेज या विश्वविद्यालय नहीं भेजते। कुछ लोग लड़िकयों का किसी स्कूल में पढ़ाना या कोई और नौकरी करना गलत मानते हैं और कहते हैं कि लड़िकयों की यह मनमानी उन्हें

मजहब से दूर कर देती है। ऐसी सोच अब भी है, इसके बावजूद कि वक्त बदल रहा है और लोग लड़िकयों के बारे में अपनी धारणा बदल रहे हैं।

गांव के लोग बहुओं का घर पर रहने और उन्हें घर संभालते हुए घरेलू महिला के रूप में ही देखना पसंद करते हैं। इसीलिए वहां कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएं अगर हैं भी, तो वे सिर्फ घरेलू महिला बन कर रह गई हैं। उन्हें नौकरी करने नहीं दिया जाता और इस तरह उनका पढ़ा-लिखा सब बेकार हो जाता है। ऐसी सोच के मालिक शहरों में भी हैं, जिनके घर में शिक्षित लड़िकयां घुट कर रह जाती हैं।

अपने कुछ अनुभवों के आधार पर कह सकती हूं कि गांव की बहुएं आज भी सिर्फ डॉक्टर के पास या अस्पताल जाने या फिर तीज-त्योहार पर बाजार के

लिए ही बाहर निकलती हैं। कितनी जकड़ी सोच है! रिश्तेदारी में फालतू घूमना बुरा नहीं समझा जाता, मगर स्कुल-कॉलेज या विश्वविद्यालय और सेहत के लिए टहलने को बुरा समझा जाता है।

ऐसी कितनी ही लड़िकयां हैं जो पढ़-लिख कर भी रोजगारयाफ्ता और खुदमुख्तार नहीं हैं, शहरों में और गांव में भी। उन्हें सिर्फ इसलिए पढ़ाया जाता है कि अब अनपढ़ लड़िकयों को लड़के पसंद नहीं करते। लड़िकयों की अपनी ख्वाहिश

दुनिया मेरे आगे और जरूरत, अपना वजूद, उनकी माली हालत आज भी किसी के लिए मायने नहीं रखती। वे बस सौंदर्यबोध का साधन हैं, घर और जिस्म की जरूरत पुरा करने का जरिया... बच्चे पैदा करने की मशीन।

> शहरों में कुछ जगह मिली है लड़िकयों को, क्योंकि वहां पढ़ने-लिखने के मौके उनके सामने मौजूद हैं। वह स्कूल-कॉलेज हो या फिर निजी कोचिंग संस्थान। शहरों में मुसलिम परिवारों में भी अपने घर की लड़कियों को पढ़ाने या नौकरी करने देने में कोई खास हिचक नहीं रही। परदे की भी बहुत मजबूरी नहीं रही। शहरों का जीवन लड़िकयों को शायद इसीलिए पसंद है।

सच यह है कि समझदार प्रेमी शहर की लड़की की जरूरतों और इच्छाओं को देखते हुए उसे जबरन गांव

फैसला आने के पहले ही काट लेते हैं। यह सब

नहीं ले जाता। हां, गांव के संपर्क में रहा सकता है। घर वाले भी खुश और प्रेमिका या बीवी भी खुश। जो ऐसा नहीं कर पाते, वे दर्द, क्षोभ और बदला लेने के भाव वाले गीत गाते रह जाते हैं। मेरी राय यह है कि लडकियों से अनुरोध मत कीजिए कि वे मौका दें, बल्कि अपने गांव का माहौल दुरुस्त करने की जरूरत है। अपने घर में मर्द-औरत की गैरबराबरी को दूर कर लिया जाए, लड़िकयों और बहुओं को स्कूल-कॉलेज और विश्वविद्यालय जाकर उच्च शिक्षा और रोजगार हासिल करके खुदमुख्तार बनने, अच्छी सेहत के लिए सुबह टहलने के मौके और आजादी मुहैया कराएं..! उन्हें सिर्फ अपनी जरूरत का सामान सौंदर्यबोध का आनंद लेने का साधन और बच्चे पैदा करने की मशीन न समझें।

महिलाओं को ये खेत, निदयां, झरने, पहाड़, फूल, दरख्त को देखने और उनकी खूबसूरती के एहसास से दूर रखा जाता है। सवाल है कि क्या प्रकृति को देखते रहने का हक सिर्फ मर्द को है? क्या तालीम और रोजगार हासिल करने का हक सिर्फ मर्द को है? इस तरह के पुरुषवादी, पितुसत्तात्मक और गैरबराबरी वाली सोच और माहौल को खत्म करना होगा। लड़कियां बेवफा नहीं होतीं। लडकों की सोच सीमित है, जिसे बड़ा बनाने की जरूरत है। लड़िकयां भी प्यार करना चाहती हैं, लेकिन अब अपनी शिख्सयत और इच्छाओं के दमन की कीमत पर नहीं।

छीजता विश्वास

निगरिकता संशोधन विधेयक सरकार की मंशा पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न है। जब देश के सामने बहुत से बुनियादी मुद्दे मुंह बाए खड़े हैं, सरकार इतिहास में जाकर तत्कालीन फैसलों को मन-मुताबिक बदलने का गैरजरूरी काम कर रही है। वर्तमान सरकार किसी भी तरह बहुसंख्यकों को अपने से बांधे रखना चाहती है। सरकार का यह प्रयास देश के बहुधर्मी समाज के लिए एक गलत संदेश है। जिस लोकतांत्रिक देश में एक से अधिक समुदाय रह रहे हों, उसे अपने फैसले बहुत सोच-समझ कर लेने चाहिए। ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे दो समुदायों के बीच किसी भी तरह की दुरी या अलग-थलग किए जाने की भावना बढ़े।

एक छोटी-सी भूल समाज को अविश्वास के घेरे में ले लेती है। इस तरह का अविश्वास बहुत खतरनाक होता है, जिसकी एक झलक विभाजन के समय देश देख चुका है। उस समय भी एक दो गलत फैसलों ने पूरे देश का मंजर बदल के रख दिया था। सरकार को अगर नागरिकता विषयक कोई संशोधन करना था तो उसके मानक सभी समुदायों के लिए बराबरी के होने चाहिए थे। धार्मिक आधार पर इस तरह का तानाशाही फैसला देश के सामाजिक ढांचे को बेतरह प्रभावित करेगा, जो उचित नहीं। सरकार को अपने कथन 'सबका साथ, सबका विकास' को ध्यान में रखना चाहिए। इस फैसले पर सरकार को पुनर्विचार करना चाहिए। ऐसा नहीं होने पर सर्वोच्च न्यायालय को इस मामले में संज्ञान लेना चाहिए। विडंबना यह है कि इन मुद्दों की परतें लोगों को समझ में आ सके, यह भी स्थिति नहीं बनने दी जा रही है। आक्रामक प्रचार-तंत्र के जरिए भाजपा ने लोगों के बीच में जिस तरह की धारणा बना दी है, वह आने वाले समय में देश के साथ-साथ देश में बौद्धिक कसौटी का भी संकट बनेगा।

• घनश्याम यादव, अलवर, राजस्थान

इसाफ का दखाजा

अदालतों में मुकदमे की संख्या में बढ़ोतरी अब भयावह रूप लेती जा रही है और यह स्थिति विभिन्न विसंगतियों को जन्म दे रही है। राष्ट्रीय अदालत प्रबंधन की रिपोर्ट के मुताबिक बीते तीन दशकों में मुकदमों की संख्या दोगुनी रफ्तार से बढ़ी है। अगर यही स्थिति बनी रही तो अगले तीस वर्षों में देश के विभिन्न अदालतों में लंबित मुकदमों की संख्या करीब पंद्रह करोड़ तक पहुंच जाएगी। आजादी के बाद से ही अदालतों और जजों की संख्या आबादी के बढते अनुपात के मृताबिक कभी भी कदमताल नहीं कर पाई। इस वजह से न्याय

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-८, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

के नैसर्गिक सिद्धांत के मुताबिक न्यायपालिका में भी मांग और आपूर्ति के बीच संतुलन कायम नहीं हो सका। विधि आयोग ने 1987 में कहा था कि दस लाख लोगों पर कम से कम पचास न्यायाधीश होने चाहिए, लेकिन आज भी दस लाख लोगों पर न्यायाधीशों की संख्या पंद्रह से बीस के आसपास है।

कहते हैं कि दुश्मनों को भी अस्पताल और कचहरी का मुंह न देखना पड़े। यह इसलिए कहा जाता है कि दोनों जगहें आदमी को तबाह कर देती हैं और जीतने वाला भी इतने विलंब से न्याय पाता है कि वह अन्याय के बराबर ही होता है। छोटे-छोटे जमीन के टुकड़े को लेकर पचास-पचास साल मुकदमे चलते हैं। फौजदारी के मामले तो और भी संगीन स्थिति हैं। अपराध से ज्यादा सजा लोग

केवल इसलिए होता है कि मुकदमों की सुनवाई और फैसले की गति बहुत धीमी है। तमाम विसंगतियों के बाद भी न्यायालयी प्रक्रिया के प्रति आम लोगों का विश्वास कुछ इस वजह से भी है कि आम लोगों में विश्वासबहाली के लिए जो काम कार्यपालिका को करना चाहिए था, वह न्यायालय को करना पड़ा है। पिछले कुछ वर्षों में नेताओं की मनमानेपन और अपराधियों से उनकी सांठगांठ पर चुनाव आयोग और न्यायालय ने मिल कर लगाम कसने की जो कोशिश की है.

उससे भी आम लोगों का उस पर भरोसा बढ़ा है। अब वक्त आ गया है कि न्याय के लिए न्याय व्यवस्था में ठोस सुधार किया जाए।

• अनु मिश्रा, बिटुना, सिवान

पयोवरण का रुख

रपेन की राजधानी मेडिड में पर्यावरण मंत्री ने 'कॉप 25' सम्मलेन में जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते के अनुरूप काम करने की जानकारी दी। ऐसा लगता है संयुक्त राष्ट्र के मातहत पिछले पच्चीस सालों से सिर्फ समय बर्बाद किया जा रहा है। चालीस फीसद कार्बन उत्सर्जन के लिए जो दो देश जिम्मेदार हैं, उसमें से अमेरिका तो इस संकल्पना को ही नकार चुका है। चीन ने किसी भी अंतिम तारीख को मानने से मना कर

दिया है। 1995 में बर्लिन में हुए पहले सम्मलेन में नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा देने, उत्सर्जन रहित तकनीक के लिए, अमीर देश गरीब देशों को आर्थिक

मदद देने पर चर्चा हुई थी। इसे मूर्त रूप नहीं दिया जा सका। पेरिस सम्मलेन के बाद यह अघोषित रूप से सहमित बनी कि सभी देश अपने स्तर पर इस पर काम करेंगे। 2030 तक उत्सर्जन को आधा करने और तापमान को दो डिग्री से ज्यादा नहीं बढ़ने देने के लिए अब दुनिया का पास सिर्फ ग्यारह साल बच रहे हैं। ऐसा नहीं लगता कि कुछ ठोस हो पाएगा। गरीब देशों पर मौसम में बदलाव का सबसे ज्यादा असर होता है। पिछले साल केरल के बाढ़ ने वहां के जीडीपी के एक वर्ष की आमदनी को स्वाहा कर दिया था।

जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर

अच्छा भी, बुरा भी

आज के समय में तो सोशल मीडिया के मंचों पर बहुत भीड़ लगी हुई है। हर एक व्यक्ति के दिल और दिमाग पर भी यह राज कर रहा हैं और इस पर लोग और यहां तक कि बच्चे भी खुब व्यस्त रहते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि सोशल मीडिया जितना फायदेमंद है, उतना ही नुकसानदेह भी है। यों इसका पहला प्रभाव सकारात्मक है, दूसरा नकारात्मक। बहुत सारी सूचनाएं आज हमें सोशल मीडिया से ही मिल पाती है। नए लोगों से जान-पहचान बनती है, हमारी दुनिया बड़ी होती है। लेकिन यह भी सही है कि इसकी वजह से अपराधों का दायरा भी बढा है। आज जिस तरह बच्चे इसमें अपनी दुनिया को गुम कर ले रहे हैं, वह आने वाले वक्त के लिए एक चेतावनी की तरह है। इसलिए अगर सीमा में इसका उपयोग किया जाए तभी इसका फायदा समाज को मिल सकता है। वरना समाज का चेहरा विकत भी हो जा सकता है।

• मो जमील, मधुबनी, बिहार

www.readwhere.com